बापू का अध्यात्म

श्री रमेश थानवी, अध्यक्ष, राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर

बापू महात्मा कहलाये। उनके नाम के आगे यह विशेषण अनायास ही नहीं जुड़ गया था। लोक-मानस ने उनका यही स्वरूप देखा था । लोक ने उनको इसी विशेषण से विभूषित करना आवश्यक समझा था।

लोकमान्य होना किसी भी व्यक्ति के लिए बड़ा सम्मान होता है। असली सम्मान। राज-मान्य इसके विपरीत एक घटिया अवधारणा है। वे बाद में राष्ट्रपिता हो गये। राष्ट्रपिता का विशेषण भी उनको सुभाष चन्द्र बोस ने दिया था; मगर महात्मा के नाम से वे सदा जन समुदाय में आदरपूर्वक जाने जाते रहे।

बापू जो बैरिस्टर थे; विलायत में पढ़े थे और वकालात से अपनी रोटी कमाने की चाहत से दक्षिण अफ्रीका में जा बसे थे; उनका मन कभी अपने पेशे में रमा नहीं। वे प्रारम्भ से ही किसी और मार्ग की तलाश में रहे। उनको तलाश रही किसी और तत्त्व की। वह तत्त्व अन्ततः उनको ईश्वर में ही दीखा। प्रारंभिक दिनों में उन्होंने कहा **ईश्वर सत्य है,** किन्तु अंतिम दिनों में वे इस निष्कर्ष पर पहुंच गये कि **सत्य ही ईश्वर है**।

यह निष्कर्ष सर्वथा वेदसम्मत था और बापू के अध्यात्म का आधारस्तम्भ था। एक प्रसिद्ध वैदिक उक्ति है - **सत्यान्नास्ति परो धर्मः।**

भारत आने पर उनको इस **सत्य** के दर्शन **लोकजीवन** में हुए। इस लोकदर्शन को उन्होंने सबसे पहली प्राथमिकता समझा। वे सारे भारत की यात्रा पर निकल पड़े। **थर्ड क्लास** के डिब्बे में बैठ कर। पूरे देश को आंखों में भर लेना और तमाम वे दुख जिनको लोक अर्थात् भारत का जन-जन भोग रहा था; उन्हें आत्मसात कर लेना; यही उनका **पहला सरोकार** था। धीरेन्द्र मजूमदार इसे **लोकगंगा का स्नान** कहते थे। यद्यपि धीरेन्द्र दा बापू से बहुत छोटे थे, लेकिन बहुत बाद में कही गयी उनकी बात अब हमारे

साथ चलती है। इस लोकदर्शन अथवा लोकगंगा के स्नान ने बापू को भिगो दिया था। सारे देश की आंखों देखी व्यथा-कथा को बापू ने दिल में उतार लिया। बापू को आज़ादी का रास्ता दीख गया। **लोक** बापू का अध्यात्म बन गया था। वे नयी शक्ति के साथ अपने रास्ते पर चल पड़े थे। निडर बन कर। लम्बे-लम्बे डग भरते चल पड़े थे। करोड़ों लोगों को अपने दिल में साथ ले कर।

ईश्वरकृष्ण की **सांख्यकारिका** कहती है कि तीनों दु:खों के दर्शन से ही ज्ञान की जिज्ञासा जागती है –

दु:खत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।
दृष्टे सा ह्यपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ।।1।।

बुद्ध भी कहते हैं कि सब कुछ दु:खमय है। समकालीन साहित्य में झाँकें तो **अज्ञेय** भी लिखते हैं कि **दु:ख हमको माँजता है।** जनजीवन का यही दु:ख बापू को जला रहा था। आज से ठीक सौ वर्ष पहले गुजराती **कवि न्हानालाल** ने एक गुजराती कविता में लिखा था –

वह तो सांसारिक साधु है;
गृहस्थ होकर भी
संन्यास धार बैठा है !
निरंतर दु:ख को न्योता देता,
एशिया के उन महायोगीन्द्र ईसा का
वह अनुज है छोटा सा।
पर पीड़ा देख प्रज्वलित होता
महा वैष्णवों का वह वंशज है।
श्रीनगर का मानो **नरसिंह** मेहता।
हिय उसके होली सुलगे,
जलते अंगारों से नेत्र,
मुखमंडल पर विषादरेखा।
देश की चिंता उसे जलाती,
सूखी जाती है देहलता।

मार्गदर्शक लोक-कवि के रूप में **नरसी मेहता** बापू के प्रेरणा पुरुष बन गये थे। उनको **नरसी मेहता** का यह भजन **वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाणे रे...,** रास आ गया। उनके मन को भा

गया और वे इसी एक भजन में सार रूप में एक बड़े **आध्यात्मिक सत्य** को देखते रहे। **नरसी** इस भजन के साथ ही उनके संगी-साथी हो गये और **नरसी** का दूसरा भजन उनके मन को फिर भा गया - वह था- **एकज दे चिंनगारी महानळ...**। पहले भजन में बापू **नरसी** की करुणा से आप्लावित हुए थे और दूसरे भजन ने उनके मन में सत्य का अन्वेषण करने और उसे पा लेने की चाहत को और प्रबल कर दिया। यहाँ ग़ौर करने और समझने की बात यह है, कि सत्य तक पहुँच कर उसे **पा** लेने की चाहत बड़ी बात थी। जानना और **पा** लेना दो अलग-अलग आवश्यकताएँ हैं। **नरसी** जिस चिनगारी की माँग कर रहे थे, वह चिनगारी उसी **अग्नि तत्व** का नाम था, जिसे **कठोपनिषद्** में **यमराज** ने **नचिकेता-अग्नि** का नाम दिया। यह वही सत्य था, जिसकी बापू को तलाश थी और इस सत्य के सार्वलौकिक, सार्वभौमिक और सार्वकालिक होने में कोई संदेह नहीं था। कठोपनिषद् कहता है –

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव ।।2.2.911।।

एक ओर **नरसी** की करुणा थी और दूसरी ओर सत्य की चाहत थी, जिसे बापू ईश्वर के रूप में ही देखते रहे जीवन भर। यहाँ हम देखते हैं, कि बापू का अध्यात्म लोक में बसता था। वे जैसे **नरसी** के निकट गये थे, वैसे ही **कबीर** के भी करीब थे। उतने ही वे नानक के समीप थे। **लोक में बापू का राम रमता था और जीवन के हर स्पंदन में उन्हें उसी ईश्वर का दर्शन होता था, जिसे वे सच मानते थे,** अन्तिम सत्य के रूप में स्वीकार करते थे। **लोक** में **कुदरत भी साथ थी और करीम भी साथ था**। बापू के लिये कुदरत का ज़र्रा, ज़र्रा बेशकीमती था और यह कहूँ कि वह ईश्वर का ही पर्याय था तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।

वे कहते थे कि मेरे हर श्वास-प्रश्वास में रामनाम का जाप चलता रहता है। वे **रामनाम को सबसे बड़ी दवा मानते थे** और बताते थे कि यही रामनाम **रामबाण** दवा है। उन्होंने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम ही **रामनाम है।** इस पुस्तक में रामनाम की महिमा वैसे ही गायी गयी है, जैसे कोई इन दो शब्दों का पूरा भाष्य लिख रहा हो।

अब यहां हम देखते हैं कि बापू के जीवन में अध्यात्म ने **लोकमार्ग** से प्रवेश किया था और वे उसी **लोक** के लिए काम करते हुए अपने अध्यात्म को जीवन भर सींचते रहे। वह विलक्षण महात्मा ईश्वर को पाने के लिए जंगल में नहीं गया, उस महात्मा ने ईश्वर को पारलौकिक सत्ता नहीं माना बल्कि लोक से विचरता हुआ वह पारलौकिक सत्य को देखता रहा। करुणा तथा प्रेम के बिना एवं पर-पीड़ा को पूरी संवेदना के साथ समझे बिना उसको अपना जीवन व्यर्थ लगता था। परपीड़ा और करुणा उसकी लोक के प्रति आस्था से उपजी थी। उसका धर्म लोक में था, परलोक में नहीं। वह कुटिया में बैठ के

साधना करने नहीं गया था, किन्तु **परहित सरिस धर्म नहीं भाई** को समझते हुए तथा 'रघुपति राघव राजा राम' गाते हुए ईश्वर तत्त्व के दर्शन कर चुका था।

वह कभी कबीर के साथ था जब कबीर ने पूछा था- दुई जगदीश कहाँ ते आया ? उसके लिए सारे धर्म, संप्रदाय एवं पन्थ एक ही थे। अर्जुन की तरह उसका भी मोह नष्ट हो गया, उसको भी अपनी मूल-सत्ता (स्मृति) मिल गयी थी और वह भी आध्यात्मिक स्तर पर वहां पहुँच गया था कि कह सक **स्थितोऽस्मि।** बापू ऐसे ही अपने में स्थित थे। इस स्थिति ने उनको दृढ़ता दी थी, ऐसी कि उद्घोष कर सके- **अंग्रेज़ों भारत छोड़ो- क्विट इंडिया।**

इस दृढ़ता की तथा ऐसी प्रतिबद्धता की कुछ तस्वीरें तो देख लीजिए। पहली तस्वीर है कि उन्होंने जहाँ साबरमती आश्रम बसाया वहाँ जंगल था और उस जंगल में साँप बहुत रहते थे। आश्रम बसाने का काम जब शुरू हुआ तो बापू ने अपने सभी सँगी साथियों से कहा यहाँ साँप हमारे मेज़बान हैं और अच्छा मेहमान कभी अपने मेज़बान को तकलीफ़ नहीं देता। उन्होंने हिदायत दी थी कि कोई भी सांप को मारेगा नहीं, बल्कि एक रस्सी के फंदे में बाँधकर उनको थोड़ा दूर छोड़ आयेगा ताकि वे अपने लिए नई जगह चुन लें। उस आश्रम में जब रात को साँप निकलते थे तो पहरा देने वाले उनके सँगी साथी यही काम करते थे, कि साँप को एक फँदा पहनाकर बाँधकर बाहर छोड़ आते थे, और जिंदा छोड़ आते थे। यह जानकारी मुझे उनके अत्यन्त आत्मीय सहयोगी **काशीनाथ त्रिवेदी** से मिली जो साबरमती के प्रारम्भिक दिनों में यह काम कर चुके थे और जिनके साथ रहने का मुझे बार-बार अवसर मिला।

दूसरी तस्वीर देखिए - **बाबा बलवंत सिंह** शौच हेतु जंगल में गये थे। जंगल से लौटते समय लगभग पाँच सेर माटी का एक ढेला उठा लाये और आश्रम में जहाँ मिट्टी से हाथ धोये जाते थे, उसी स्थान पर रख दिया। बापू उधर से गुजरे, तो उनको वह माटी का ढेला दीख गया और उन्होंने तुरंत ही जानकारी चाही, कि माटी का यह ढेला खेतों से कौन लेकर आ गया है। उनके सामने कोई झूठ नहीं बोल सकता था; यह उनके व्यक्तित्व का करिश्मा था और उनकी तालीम थी। बलवंत सिंह जी स्वयं चले आये और उन्होंने कहा बापू यह भूल मुझसे हुई है। बापू ने कहा कि तुम इस माटी के ढेले को उसी खेत में फेंक कर आओ जिस खेत से लाये हो। तुम्हे मुट्ठी भर माटी चाहिए थी तुम पाँच सेर क्यों उठा लाये? यह अपरिग्रह का व्रत तुमसे कैसे भंग हुआ? भरी दुपहरी में **बाबा बलवंत सिंह** उसी खेत में गये और वह माटी का ढेला ससम्मान क्षमा-याचना के साथ उसी खेत में रख आये। यह तथ्य मुझे **बाबा बलवंत सिंह** की पुस्तक **बापू की छाया में** से मिला है।

तीसरी तस्वीर देखिये - बापू पत्र लिख रहे थे। पास से मीरा बहिन गुजरी तो बापू ने कहा **मीरा, दो पत्ती नीम की तोड़ लाओ।** बापू पत्र लिखते गये और मीरा एक डाली तोड़कर बापू के पास रख कर चली गयी। वे जो भी काम करते थे, ऐसी तल्लीनता से करते थे कि उन्हें आसपास दूसरा कुछ दीखता नहीं

था। पत्र लिखने का काम खत्म हुआ तो देखा, कि **मीरा** एक टहनी तोड़ कर रख गयी है। उन्होंने **मीरा** को बुलाया और फिर पूछा – **मीरा,** मैंने तो दो ही पत्ती मांगी थी, तू ये पूरी टहनी तोड़ कर क्यों ले आयी। तुझ से यदि अपरिग्रह का व्रत भंग हुआ है तो यह मेरा ही अपराध है। **मीरा बहन** सकते में थी, काटो तो खून नहीं किन्तु बापू को इतने भर से संतोष नहीं हुआ। शाम की प्रार्थना–सभा में घोषणा कर दी गयी कि **मीरा** से अपरिग्रह का व्रत भंग हुआ है इसलिए मैं कल उपवास करूंगा और मौन भी रखूँगा। **मीरा** के लिए इससे बड़ी सजा कोई नहीं हो सकती थी, लेकिन यह बापू की तालीम का तरीका था। वे अपने सहयोगियों को ऐसे ही तप से गुजारते थे, कुंदन बनाते थे और अध्यात्म से सींचते थे। कोई **मीरा बहन** की डायरी और उनकी अनुपम पुस्तक **द् स्पिरिट्स पिलग्रिमेज** पढ़े तो ऐसी कई छवियाँ मिल सकती हैं।

उक्त तीनों तस्वीरें बताती ह कि बापू कितने करुणामय थे। ज़र्रे–ज़र्रे में ईश्वर के वास के प्रति कितने सजग थे और कुदरत के कितने करीब रहकर सच्चे पर्यावरण–प्रेमी हो गये थे। चाहे माटी हो, चाहे साँप हो, चाहे नीम की दो पत्ती हो, बापू के लिए इन सबके प्रति समान प्रेम था। यह वही प्रेम था जिस प्रेम से परमात्मा प्रकट हुआ करता है। तुलसी ने कहा है – **हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम तैं प्रकट होहिं मैं जाना।**

आज कोई ऐसा राजनेता पूरी दुनिया में कहीं नहीं दिखायी देता जो आश्रम में रहता हो और देश की आजादी के आन्दोलन की व्यूह रचना करता हो फिर भी जिसके आश्रम में सवेरे व शाम बिना नागा प्रार्थना सभाएँ होती हों !!! बापू की प्रार्थना सभाएँ सर्वधर्म–प्रार्थना–सभाएँ होती थीं। कुरान भी था उनमें, गीता भी थी और सबसे पहले तो **ईशावास्य उपनिषद्** था। वहाँ गाया जाने वाला हर भजन पूरी उदारता के साथ सब धर्मों को समान दृष्टि से देखता था, मानवता को उन सबसे ऊँचे स्थान पर रखता था। महाभारत में **महामुनि वेदव्यास** ने कहा था –

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि।
न हि मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्।

बापू भी यही कहते थे। बापू के यहाँ आदमी बड़ा भी था और बराबर भी। न जातिभेद, न भाषा भेद और न रंगभेद। उनकी प्रार्थना–सभाओं में **रैदास** के भजन भी गाये जाते थे। जिनका प्रसिद्ध भजन है –

जब राम–नाम कहि गावेगा।
तब भेद–अभेद मिटावेगा।।

यह सर्वधर्म-समभाव बापू का अध्यात्म था। मानवता की सर्वोच्च स्थापना भी बापू का अध्यात्म था। **वेद** कहते हैं, कि **प्रजापति की सृष्टि में मनुष्य प्रजापति के निकटतम है।** बापू भी यही कहते थे।

एक पुस्तक है जो खुद बापू ने लिखी है–**हिन्दू धर्म क्या है ?** यह पुस्तक नेशनल बुक ट्रस्ट से छपी है। इसमें बापू उल्लेख करते हैं कि **ईशावास्य उपनिषद्** का पहला श्लोक पूरी मानवता को हर संकट से उबारने के लिए काफ़ी है। पहला श्लोक ही नहीं, पहले श्लोक की पहली पंक्ति ही काफ़ी है। उन्होंने लिखा है कि कभी ज़लजला आ जाये और पूरी दुनिया उसमें डूब जाये अथवा कभी कोई बड़ा अग्निकाण्ड हो जाये और उसमें सब कुछ जल जाये, लेकिन **ईशावास्य उपनिषद्** के पहले श्लोक की पहली पंक्ति बच जाये तो पूरी कायनात उठकर खड़ी हो जायेगी। **ईशावास्य उपनिषद्** का पहला श्लोक सभी जानते हैं –

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।।1।।

बापू का अध्यात्म उनके **गीता** में प्रवेश से प्रारम्भ होता है। अत्यन्त रोचक बात है कि गीता के दूसरे अध्याय के दो श्लोक उनको सबसे अधिक आकृष्ट करते हैं और वे इतने मोहित हो जाते हैं कि पूरी गीता खोज कर पढ़ लेने से पहले उनकी जिज्ञासा शान्त नहीं हुई। वे दो श्लोक हैं –

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। 2.62।।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।2.63।।

यह तो प्रवेश मात्र था। वे फिर गीता का अध्ययन करते हैं और उसको मथ-मथ कर उसका सम्पूर्ण सार संकलित करते हैं। फिर **गीता माता** के नाम से पूरी पुस्तक लिख डालते हैं। गीता से कुल बयालीस (42) श्लोक चुनते हैं और इन श्लोकों में वह पूरी गीता समाहित है ऐसा सोचते हैं। गीता के जिस श्लोक की वे पुरजोर पैरवी करते हैं, वह है –

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।। 6.5।।

आत्मा से मनुष्य आत्मा का उद्धार करे, उसकी अधोगति न करे। आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है।

वे हमारे लिए **गीता माता** नाम की पुस्तक एक निधि के रूप में छोड़ जाते हैं और ऐसा काम अपने आध्यात्मिक दुलार के वशीभूत होकर करते हैं, कि कम से कम सुचिंतित परिचय एवं सरलार्थ के साथ सारे लोगों को मिल सके। यहाँ मैं दुलार शब्द का प्रयोग इसलिए कर रहा हूँ कि बापू अपने जीवन के हर पल और हर प्रयास में लोक-वत्सल थे। उनमें वात्सल्य कूट-कूट कर भरा था और उस वात्सल्य में भी वही प्रेम प्रकट होता था, जो मैया यशोदा के मन में कभी रहा होगा अथवा कौशल्या के मन में जागा होगा।

बापू का अध्यात्म उनके जीवन में उतर गया था। अपने ही आचरण पर आधारित । न वहाँ पाखण्ड था और न वहाँ किसी तरह का मोह था। न कोई विकार था। शुद्ध निर्मल हृदय से सबके प्रति समान भाव रखते हुए वे जैसा व्यवहार करना चाहते थे, वैसा ही करते थे। उनके जीवन में आचरण के एक सूत्र के रूप में जिन एकादश मूल्यों को पिरोया गया था, उनका उल्लेख करना बहुत आवश्यक है। क्योंकि इन्हीं एकादश मूल्यों पर सुदृढ़ आचरण करते हुए महात्मा ने अपने जीवन में अध्यात्म को उतारा था, उसका पोषण किया था और उसे पुष्ट करते हुए सच्चे आध्यात्मिक जीवन के अर्थ को वे संप्रेषित कर सके थे। ये एकादश मूल्य हैं –

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह।
शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन।।
सर्वधर्म-समानत्व, स्वदेशी, स्पर्शभावना।
विनम्र व्रतनिष्ठा से ये एकादश सेव्य हैं।।

महात्मा जी का जीवन अपने आप में एक सन्देश था। सनातन सन्देश। उनका अध्यात्म उनके अपने अध्ययन और अन्वेषण से पुष्ट था। वे निरन्तर अध्ययन करते रहते थे और अपने समकालीन सन्तों से, विचारकों से एवं विद्वज्जनों से चर्चा परिचर्चा करते रहते थे। देश के हजारों विद्वज्जन उनके साथ जुड़ गये थे और अलग-अलग स्रोतों से उनको नयी-नयी रोशनी मिलती रहती थी।

अपनी जीवनी को बापू **सत्य के साथ मेरे प्रयोग** कहते हैं। यह जीवनी उनके प्रारंभिक जीवन की कथा है। इसके बाद का उनका जीवन घोर संघर्षमय है। इस संघर्ष में भी **सत्याग्रह** उनका शस्त्र था। सत्याग्रह को समझाते हुए वे हिन्द स्वराज में लिखते हैं –

सत्याग्रह अपने अधिकारों को आत्म-उत्पीड़न के द्वारा प्राप्त करने का माध्यम है, यह शस्त्रों द्वारा विरोध का विलोम है। इसका उद्देश्य युद्धबल के उद्देश्य से बिल्कुल उल्टा है। अगर कोई काम मेरी

आत्मा को अस्वीकार्य है, मैं उसे करने से इनकार कर दूं तो आत्मबल का इस्तेमाल करना सत्याग्रह है। अगर सरकार कोई ऐसा कानून बनाती है जो मुझ पर लागू होता है और मैं उसे पसंद नहीं करता। अगर मैं उसे निरस्त कराने के लिए हिंसा का प्रयोग करता हूं तो यह शरीरबल का प्रयोग करना होगा। मैं उस कानून को मानने से इनकार कर देता हूँ तो मैं आत्मबल प्रयोग करता हूँ यानी सत्याग्रह करता हूं। यही आत्मबलिदान है–आत्मोत्सर्ग उसका हिस्सा है। सब मानते हैं कि दूसरे के बलिदान से लाख गुना अच्छा आत्म–बलिदान होता है।

अब यहाँ हम समझ सकते हैं कि महात्माजी के जीवन में अध्यात्म कैसे कूट–कूट कर भरा हुआ था। हम यह भी कह सकते हैं कि उनके जीवन का सारा ताना–बाना अध्यात्म से ही बुना हुआ था। जिसे आत्म–तत्त्व की पहचान होती है और जो आत्म–बल का उपयोग युद्ध बल के खिलाफ करते हुए आत्मोत्सर्ग करने को तैयार है वह भला अध्यात्म से कितना दूर हो सकता है ?